कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

॥ श्रीः ॥

॥ स्तोत्र पञ्चरत्न ॥

—॥ अर्थात् ॥—

परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रीमच्छङ्कराचार्य्य के विरचित पांच स्तोत्रों का सङ्ग्रह।

श्री पण्डित नारायणपति त्रिपाठी जी के बनाए हुए भाषा पद्यानुवादों से अलंकृत।

—॥ और ॥—

बाबू देवकीनन्दन खत्री द्वारा प्रकाशित।

पन्नालालराय मैनेजर लहरी प्रेस, काशी द्वारा मुद्रित।

सम्वत् १९६५

सूचना ।



इस "स्तोत्र पञ्चरत्न" में निम्न लिखित पांच स्तोत्र हैं :—

१—अपराध क्षमापन स्तोत्र ।

२—द्वादशपञ्जरिका स्तोत्र ।

३—चर्पट पञ्जरिका स्तोत्र । (अथवा भजगोविन्द स्तोत्र)

४—पञ्चरत्न मालिका स्तोत्र ।

५—पञ्चाक्षर स्तोत्र ।

इनमें अन्तिम स्तोत्र का पाठ एक हस्त लिखित प्रति के अनुसार रक्खा गया है और सब स्तोत्रों के पाठ स्तोत्ररत्नाकर से उद्धृत किये गए हैं—अतएव यदि कहीं कुछ पाठ भेद देख पड़े तो पाठकगण स्वयं विचार लेवें योंही कहीं कहीं की अशुद्धियों को भी शोध लेने की कृपा करें ॥

जैसे—पृष्ट	पंक्ति		अशुद्ध		शुद्ध
४	५	...	प्रतिपादत	...	प्रतिपादित ।
५	९	...	घा	...	घी ।
६	३	...	तारे	...	तीरे ।
८	९	...	वाज	...	वाजि ।
१६	९	...	ह्यपदशेः	...	ह्युपदेशः ।
२२	५	...	कस्तयं	...	कस्त्वं ।
२३	७	...	वन	...	वहु ।
२५	१	...	पञ्चरत्न	...	पञ्चरत्न ।
२६	१३	...	१ "तत्मसि"	...	१ "तत्त्वमसि" पृ०

विनीत—

अनुवादक ।

॥ श्रीशैवन्दे ॥

निवेदन ।



श्री १०८ भगवान् शंकराचार्य को पठित समाज में कौन नहीं जानता है? क्योंकि उक्त आचार्य स्वामी जी का प्रादुर्भाव केवल सनातन वैदिक धर्म के रक्षार्थ ही हुआ था, फिर यदि वे अनेक वेदांत ग्रन्थ और भगवद्गीता इत्यादि पर अपना भाष्य नहीं लिख गए होते तो आज दिन इस भारतवर्ष में न तो उन ग्रन्थों का ही दर्शन होता और न सनातनधर्म ही की ध्वजा फहराती, वरन चीन, जापान, लंका इत्यादि की तरह यहां भी बौद्ध धर्म ही का अड्डा बना रहता। जो हो आज मैं उन महानुभाव का जीवनचरित लिखने के लिये नहीं बैठा हूं—क्योंकि "छोटे मुंह बड़ी बात" कैसे हो सकती है? हां जो लोग उनका वृत्तान्त जानना चाहें वे संस्कृत के प्रसिद्ध "शङ्कर दिग्विजय" अथवा "शङ्कर चरित" इत्यादि ग्रन्थों को देख लेवें—क्योंकि उक्त आचार्य महाराज जब काशीधाम में आये थे तब मणिकर्णिका तीर्थ पर

उनसे "ब्रह्मसूत्र" एवं "गीता" इत्यादि के निर्मिता भगवान वेद व्यासजी का समागम हुआ था जब कि (ब्रह्मा के अवतार) सुरेश्वराचार्य जी ने यह पद्य कहा था :—

"शङ्करः शङ्करः साक्षाद्, व्यासो नारायणः स्वयम् ।
तयो र्विवादे सम्प्राप्ते, किङ्करः किं करिष्यति ?"

इसी कारण से यह बात प्रसिद्ध है कि उक्त ग्रन्थों पर शांकर भाष्य ही सर्वापेक्षा यथार्थ और उत्तम है, क्योंकि सूत्रकारकी सम्मति ले करके वे भाष्य बनाये गए हैं— अतएव उसमें अर्थों की खींचाखींची नहीं देख पड़ती अस्तु उन्हीं भाष्यकार भगवान् शंकराचार्यजी ने अल्पज्ञ एवं उपासना काण्ड के प्रेमियों के हितार्थ ही अनेक देवतों की स्तुतियां ज्ञान वैराग्य और सदुपदेशों से भरी हुई बनाई हैं, जो प्रायः देख पड़ती हैं और उन स्तोत्रों को सनातन धर्मी (हिन्दू) लोग तो श्रुति--स्मृति के समान परम पवित्र मान कर पाठ इत्यादि करते ही हैं, पर अनेक विधर्मी विद्या प्रेमी लोग भी उनके अक्षरों को बड़े आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, वास्तव में आचार्य स्वामी के वचन जैसे ही उपदेश पूर्ण हैं वैसे ही सरल और हृदयंगम भी हैं। पर समय के फेरफार से आजकल संस्कृत भाषा के प्रचार घट जाने के कारण ही से बहुधा लोग

अपने धर्म-कर्म के विषय में वैसे ही अनभिज्ञ हो जाते हैं जैसे कि राजभाषा (अङ्गरेजी) नहीं जानने से राजकार्य की दक्षता में अनाड़ी बने रहते हैं ॥

हमलोगों के सभी शास्त्र इत्यादि विषय संस्कृत ही में लिखे गए हैं, पर अब यह संस्कृत मृतभाषा समझी जाती है, क्योंकि जब महाराज भोज इत्यादि का राज्य था तब उनके दरबार में यही संस्कृत भाषा जीवित और जागरूक थी, कोल कलवारिने भी संस्कृत ही में वाद विवाद (बहसें) करती थीं, पर यह बातें भगवान काल को नापसन्द हुई उनके पलटा खा जाने पर जब यवनों (मुसल्मानों) का राज्य आरंभ हुआ तब वे ही संस्कृत के ग्रन्थ हम्मामखाने के ईंधन बनने लगे। होते होते जो कुछ कोने अतरे में पड़े रह गए थे वे ही फिर हमारी वर्तमान सरकार का आश्रय पाकर किसी भांति इधर उधर चलने फिरने लगे। वास्तव में यदि यवनों ही की प्रथा अङ्गरेज लोग भी धर लिये होते तो आज दिन संस्कृत भाषा के ग्रन्थ दुर्लभ ही नहीं वरन अदृष्ट से हो जाते—इस वाग्वितण्डा का इतना ही प्रयोजन है कि अब जो कुछ बची खुची संस्कृत भाषा रह गई है, उसके भी जानने वाले लोग बहुत ही थोड़े हैं, यह प्रायः देखा जाता है कि कितने ही लोग स्तोत्रोंका पाठ तो करते हैं पर उनके अर्थ समझ

लेने का परिश्रम बिरले ही उठाते हैं ! और पण्डित लोग भी अपने धर्म ग्रन्थों का (हिन्दी) भाषा में अनुवाद कर देने पर अपने ही विगड़ैल आर्य भाइयों के अथवा विधर्मियों के छिद्रान्वेषण से डरते हैं जिस कारण से सच्चे अधिकारी लोग भी "गेहूं के साथ घुन" के समान पिसे जाते हैं ॥

बस इन्हीं बातों के विचार से आजकल संस्कृत ग्रन्थों का यथा सम्भव हिन्दी इत्यादि भाषाओं में अनुवाद होना आवश्यक सा जान पड़ता है । पर अनुवाद में मूल ग्रन्थ के अनुसार ही भाव आना चाहिये, क्योंकि अनुवादक को अपनी ओर से कुछ बढ़ाने घटाने का अधिकार नहीं है—हां जो सहृदय लोग कविता ही का आनन्द लूटना चाहें वे कृपा करके मूल पदोंही पर जा बैठें और इन स्तोत्रों में शान्त एवं भक्ति रस का स्वाद चक्खें—क्योंकि मेरे ऐसे क्षुद्रबुद्धि अनुवादक की भाषा में भगवान शंकराचार्य के पदों का भाव झलक जाना बहुत ही कठिन है । फिर भी मेरा साहस सर्वथा क्षन्तव्य है क्योंकि आचार्य स्वामीजी ने स्वयं कहा है :—

"क्षन्तव्योमेऽपराधः ।"

बहुतेरे लोगों का यह भी कथन है कि जितने ही स्तोत्रादिक प्रचलित हैं वे

सब के सब भाष्यकार ही के बनाये नहीं हैं, वरन चारो दिशाओं में स्थापित धर्म के स्तम्भरूप चारो मठाधीश महानुभाव जो आज तक श्रीमच्छङ्कराचार्य ही के नाम से प्रसिद्ध हैं उन लोगों के भी बनाये हैं संभव है कि बहुतेरे स्तोत्र आचार्य प्रभु के अनंतर उनके नामांकित आचार्यों द्वारा बने हों पर वे सभी आचार्य लोग हमलोगों के वैसेही माननीय और पूज्य हैं जैसे कि भगवान भाष्यकार हैं क्योंकि येही लोग इस कठोर कलिकाल में भी बिचारे बूढ़े धर्म के एक मात्र अवलम्बन हैं, अतएव ये पांचों ही स्तोत्रों के भाषानुवाद उन्हीं चार धर्म दिग्पाल स्वरूप चारों ही मठाधीश एवं अन्तर्हित भगवान् भाष्यकार की सेवा से भक्ति पुरस्सर समर्पित हैं ॥

और दृढ़ विश्वास है कि वे लोग प्रसन्न चित्त से, यदि आशीर्वाद दे देवेंगे तो और भी बहुतेरे उत्तमोत्तम स्तोत्रादिक यथावकाश भाषानुवाद के सहित प्रकाशित होकर पाठक महाशयों का मनोविनोद कर सकेंगे क्योंकि ये पांचों स्तोत्र केवल उदाहरण स्वरूप (नमूना) लिखे गये हैं—इनमें "चर्पटपञ्जरिका" एक बार छपी थी, जिसे लोगों ने हाथोहाथ स्वीकार कर लिया इसी से अबकी बार पांच स्तोत्र एकत्रित करके प्रकाशित किये गये हैं। अन्त में केवल एक बात और भी निवेदन कर देना है कि यदि

आजकल के सुलेखक कवि लोग उत्तम उपदेश युक्त स्तोत्र इत्यादिक धर्म सम्बन्धि ग्रन्थों की ओर दृष्टि फेरकर भाषानुवाद लिखने का कष्ट स्वीकार करेंगे तो धीरे धीरे हिन्दी का भी भंडार भर जावेगा और साथ ही साथ केवल हिन्दी जानने वाले लोगों को भी कुछ कुछ संस्कृत भाषा का आभास झलकने लगेगा ॥

॥ इत्यलं विज्ञेषु शुभम् ॥

निवेदक—

त्रिपाठी नारायणपति शर्म्मा

काशी ।

श्री शैवन्दे ।

॥ अपराध क्षमापन स्तोत्रम् ॥



आदौ कर्म प्रसङ्गात्कलयति कलुषंमातृ कुक्षौ स्थितं मां,
विण्मूत्रा मेध्य मध्ये क्वथयति नितरां जाठरो जातवेदाः ।
यद्य द्वैतत्र दुःखं व्यथयति नितरांशक्यते केन वक्तुं ?
क्षन्तव्यो मे ऽपराधःशिव शिव शिवभोःश्रीमहादेव शम्भो ! ॥१॥

आदिहि कर्म प्रसङ्गन के बस, मातु कि कोख में पाप दबायो,
मूत पुरीष निषिद्ध अशुद्ध सने, मुहिं जाठर अग्नि जलायो ।
जो तहँ दुःख अनेक सहे, उनको अब कौन सकै गनवायो ?
पाप हमार छमो शिव ! आप, नहीं करुनानिधि क्यों कहवायो ? ॥१॥

बाल्ये दुःखा तिरेकान्मल लुलित वपुः स्तन्य पाने पिपासा,
नो शक्य श्चेन्द्रियेभ्यो भव गुण जनिता जन्तवो मांतुदन्ति।
नानां रोगादि दुःखाद्रुदन परवशःशङ्करं न स्मरामि,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेवशम्भो! ॥२॥

बाल भये दुःख घेरलियो, मल लेपि तनै थन दूध पियासा,
इन्द्रिन में नहि शक्ति रही, भव जन्तुलगे करने मम नासा।
रोग रु दुःख अनेक ग्रसे तब रोदनहीकि रही इक आसा,
हे शिवशंकर! दीनदयाल! क्षमो अपराध करो न निरासा ॥ २ ॥

प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषय विषधरैः पञ्चभि र्मर्म सन्धौ,
दष्टो नष्टो विवेकः सुत धन युवति स्वादु सौख्ये निषण्णः।
शैवी चिन्ता विहीनं मम हृदय महो मान गर्वा धिरूढं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिवभोः श्रीमहादेव शम्भो !॥३॥

३

प्रौढ़ जवान भये विषयर्‌सन, पांच विषै तन संधि डँसे हैं,
नष्ट बिबेक गयो जुबती सुत, द्रव्यहि के सुख स्वाद फँसे हैं।
शंकर चिन्तन हीन हृदै महँ, मान रु गर्वहि आइ धँसे हैं,
मोर छमो अपराध महेश्वर ! तो पदमे हम माथ घँसे हैं ॥ ३ ॥

वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विनत गति मति श्राधिदैवाधि तापैः,
पापै रोगै र्वियोगै स्त्वनवसित वपुः प्रौढि हीनञ्च दीनम्।
मिथ्या मोहा भिलाषै र्भ्रमति मम मनो धूर्जटे ध्यान शून्यं,
क्षन्तव्यो मेऽ पराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥४॥

बूढ़ भये पर इन्द्रिन की, गति श्रौ मति ढीलि भई जबहीं,
रोग वियोगहिं पाप धितापन, प्रौढ़ि गई तनते कबहीं।
झूठय मोह भरे अभिलाषनमे, मन घूम रह्यो तबहीं,
धूर्जटि ध्यान से शून्य रहीं मँय, मो अपराध छमो सबहीं ॥ ४ ॥

नो शक्यं स्मार्त कर्म प्रतिपद गहन प्रत्यवाया कुलाख्यं,
श्रौतं वार्ता कथं मे द्विज कुल विहिते ब्रह्म मार्गं सुसारे ।
ज्ञातो धर्मो विचारैः श्रवण मननयोः किं निदिध्यासितव्यं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥५॥

स्मृति के प्रतिपादत कर्म सबै, नहिं होइ सके प्रतिवाय डरायो,
श्रुति की तब बात कहौं कहँलों,द्विज जोग जे ब्रह्म के मार्ग बतायो ।
नहिं धर्म विचारले जाने सुने, मननादिक ध्यानहुमें न गवांयो,
छमिये अपराध हमार प्रभू! कछु मोते नहीं करते बनिआयो ॥ ५ ॥

स्नात्वा प्रत्यूष काले स्नपन विधि विधौ नाहृतं गाङ्गतोयं,
पूजार्थं वा कदाचि द्बहुतर गहना त्खण्ड बिल्वी दलानि ।
नानीता पद्म माला सरसि विकसिता गन्ध पुष्पै स्त्वदर्थं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥६॥

५ न्हाय प्रभात नहावन के हित, जान्हविके जल मैं नहिं लायों,
पूजन हेत कबैां बनते नहिं, लाकरि बेलकि पाति चढ़ायों ।
गंधभरे विकसे सरसे नहिं, अंबुज माल तुम्हैं पहिरायों,
मैं अपराध अँधेर करौं शिव ! आपुहिते उनको सहवायों ॥ ६ ॥

दुग्धैर्मध्वा ज्य युक्तै र्दधि सित सहितैः स्नापितं नैव लिङ्गं,
नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनक विरचितं पूजितं न प्रसूनैः ।
धूपैः कर्पूर दीपै र्विविध रसयुतै र्नैव भक्ष्यो पहारैः,
क्षन्तव्यो मेऽपराधःशिव शिव शिवभोः श्रीमहादेव शम्भो ॥७॥

दूध दही मधु घी मिसिरी, पँचामृत से नहिं लिंग ह्ववायों,
चन्दन लेपि प्रसूननते, कबहूं नहिं पूजन मैं करिपायों ।
धूप कपूर प्रदीप चढ़ाय, नहीं पकवानहि भोग लगायों,
पाप बटोरि फिरैां हर ! शंकर ! मैं इनसे न कभूं बिलगायों ॥ ७ ॥

ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतर धनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो,
हव्यं ते लक्ष संख्यैर्हुतवह वदने नार्पितं बीज मन्त्रैः।
नो तप्तं गाङ्ग तारे व्रत जप नियमै रुद्र जाप्यै र्नैवेदैः
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिवभोः श्रीमहादेव शम्भो॥८॥

उरमें शिव को रखि के कबहूं, नहिं तो द्विज को धन दान कियो,
तुव बीज के मंत्रन को जपिकै, नहिं पावक में लखहोम कियो।
नियमै धरि गंग कछारन में, तप रुद्रिय को नहिं जाप कियो,
शिवशम्भु! छमा करिये अपराध, जिन्हें हम बार हजार कियो ॥ ८ ॥

स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमय मरुत्कुण्डले सूक्ष्ममार्गे,
शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटित विभवे ज्योतिरूपे पराख्ये।
लिङ्गज्ञे ब्रह्म वाक्ये सकल तनु गतं शङ्करं न स्मरामि,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिवभोः श्रीमहादेव शम्भो ! ॥९॥

स्यान सरोरुह तार समीरन, कुंडल सूछम मारग मांहीं,
७ सांत प्रलीन विभै प्रकटे पर, जोति सरूप हृदै बइठाहीं ।
लिंग जनावत ब्रह्म के वाक्यन, व्यापक शंकर को न भजाहीं,
जौ अपराध न मोर छमो, तो हमार ठिकान कहूं पर नाहीं ॥ ९ ॥

नग्नो निस्सङ्ग शुद्ध स्त्रिगुण विरहितो ध्वस्त मोहान्धकारो,
नासाग्रे न्यस्त दृष्टि र्विदित भव गुणो नैव दृष्टः कदाचित् ।
उन्मन्या वस्थया त्वां विगत कलिमलं शङ्करं न स्मरामि,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ! ॥१०॥

नंग निसंगन शुद्ध गुनै तजि, मोह मढ़े अँधियार हटाये,
नासिक अग्रहि दीठि गड़ाय, कबौं भवके गुन में न दटाये ।
ह्वै उनमत्त कभूं कलि नाशक, शंकर को चित में न सटाये,
हाय ! हमार छमो अपराध, महेश्वर ! मैं इनमें लपटाये ॥ १० ॥

चन्द्रोद्भासित शेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे,
सर्पैर्भूषित कण्ठ कर्ण विवरे नेत्रोत्थ वैश्वानरे।
दन्ति त्वक् कृत सुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्य सारे हरे,
मोक्षार्थं कुरु चित्त वृत्ति मखिला मन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥११॥

चन्द्रसे भासित शेखर ऊपर, गंग की धार धरे मदनान्तक,
शंकर सर्पन भूषित हैं, चख अग्नि लसै जनु रत्न स्यमंतक।
बस्त्र सदा पहिने गजखाल, वही जग तीनहु सार गजांतक,
मुक्ति के हेत करो उनपै चित, दूसर कर्म न होत भवांतक ॥ ११ ॥

किं दानेन[1] धनेन वाजि करिभिः प्राप्तेन राज्येन किं ?
किं वा पुत्र कलत्र मित्र पशुभि र्देहेन गेहेन किम् ?
ज्ञात्वै त त्क्षण भङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः,
स्वात्मार्थं गुरु वाक्यतो भज भज श्रीपार्वती वल्लभम् ॥१२॥

[1] "वानेन" पाठान्तर है।

दान किये अरु द्रव्य लिये, गज वाजि चढ़े बड़ राज सँवारे,
९ पुत्र कलत्रहु मित्र लहे, पसु रासि बँधे तन गेह सँभारे।
का फल होइ सकै जगमें, छन भंगुर सोचि तजो इन सारे,
स्वारथ हेत भजो गुरुते सुनि, पारवती पति हैं रखवारे ॥ १२ ॥

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रति दिनं याति क्षयं यौवनं,
प्रत्यायान्ति पुनर्गता[१] न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मी स्तोय तरङ्ग भङ्ग चपला विद्युच्चलं जीवितं,
तस्मा त्वां शरणा गतं शरणद ! त्वं रक्ष रक्षा धुना ॥१३॥

देखहु आयु सिराति प्रतिच्छन, जोबन हूं थिर ह्वै न रहैगो,
जे दिन बीतिगे वे नहिं लौटत, काल सबै निज कौर करैगो।
है लछिमी जल बीचि सो चंचल, जीवन विज्जु छटाहि भरैगो,
शंकरजू ! सरनागत वत्स (च्छ) ल ! आप कृपाकरि मोहिं रखैगो ॥ १३ ॥

---

१ "गताःपुनर्न" ऐसा भी पाठ है।

कर चरणकृतं वाक् कायजं कर्मजं वा,
श्रवण नयनजं वा मानसं वा पराधम्।
विहित मविहितं वा सर्व मेतत्क्षमस्व,
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ! ॥१४॥

कर चरन किये वाक् देहते कर्मते वा,
श्रवन चख विकारी चित्त में पाप भारी।
अकृत कृत घनेरे हैं क्षमा यान तेरे,
जय जय करुनाम्भोधे महादेव शंभो ! ॥ १४ ॥

मत्समः पातकी नास्ति, त्वत्समो नास्ति पापहा।
इति मत्वा महादेव ! यथा योग्यं तथा कुरु ॥१५॥[1]

मोसम पापि न आन, उद्धारक तो सम नहीं।
अस विचारि ईशान ! उचित होय सो कीजिये ॥ १५ ॥

---

[1] "१५ वां" स्तोत्र रत्नाकर में नहीं है।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचितमपराध क्षमापन स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्री शङ्कराचार्य विनिर्मितानि,
स्तोत्राणि दिव्यानि पुरातनानि ।
भाषानुवादेन समन्वितानि,
विलोकनीयानि बुधै रिमानि ॥१॥

इति श्रीत्रिपाठि नारायण पति शर्मे विरचितोभाषानुवादश्च समाप्तः ।

शुभम्भूयात् ।

श्रीशीवन्दे ।

॥ द्वादश पञ्जरिका स्तोत्रम् ॥



श्रीगणेशाय नमः ।

मूढ़ ! जहीहि धनागम तृष्णां, कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभसे निज कर्मोपात्तं, वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥१॥

अरे मूढ़ ! तजु धनकी आसा, करु सुबुद्धि मन होइ निरासा ।
जो मिलि जाइ कर्म बरिआई, वहि धनते मन तोषिय भाई ! ॥१॥

अर्थ मनर्थं भावय नित्यं, नास्ति ततस्सुख लेशः सत्यम्।
पुत्रा दपि धनभाजां भीतिः, सर्वत्रैषा विहिता नीतिः ॥२॥

सब अनर्थ जड अर्थहि जानो, ताम्रे तनिकहु सुख मति मानो।
पुत्रहुते धनवंत डरांही, यही नीति सर्वत्र करांही ॥२॥

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः ? संसारोऽय मतीव विचित्रः।
कस्यत्वं कः कुत आयात—? स्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः[1]! ॥३॥

को तुव प्यारी ? को है बेटा ? यह संसार बिचित्र लपेटा (समेटा)।
काके तुम हो कहँसे आये ? तत्व बिचारहु यह मति भाये ॥३॥

माकुरु जन धन यौवन गर्वं, हरति निमेषात्कालः सर्वम्।
मायामय मिद मखिलं हित्वा, ब्रह्मपदंत्वं प्रविशविदित्वा ॥४॥

धन जन जोबन गरब न कीजै, हरत काल छनमे लखिलीजै।
माया जाल सकल यह त्यागी, होहु ब्रह्म पदके अनुरागी ॥४॥

---

[1] कहीं कहीं "भ्रांतः" पाठ है।

कामं क्रोधं लोभं मोहं, त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम् ।
आत्म ज्ञान विहीना मूढा—, स्ते पच्यन्ते नरक निगूढाः ॥५॥

काम क्रोध लोभ अरु मोहै, छाड़ि बिचारो अपनो को है ? ।
आतम ज्ञान हीन मतिमंदा, पकहिं नरक मंह छुटहिं न फंदा ॥५॥

सुर मन्दिर तरुमूल निवासः, शय्या भूतल मजिनं वासः ।
सर्व परिग्रह भोग त्यागः, कस्य सुखं न करोति विरागः ॥६॥

सुर मंदिर तरु तल गृहवाला, खटिया भूमि बस्त्र मृगछाला ।
सब विध बिषय बासना त्यागा, किहिको सुख नहिं करत बिरागा ? ॥६॥

शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ, माकुरु यत्नं विग्रह सन्धौ ।
भव समचित्तः सर्वत्रत्वं, वाञ्छस्य चिराद्यदि विष्णुत्वम् ॥७॥

सत्रु मित्र सुत हित समुदाई, करहु जतन जनि मेल बुराई ।
होहु समान चित्त सब ठामू, जो चाहहु झट हरिपद (सम) नामू ॥७॥

त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णु-, र्व्यर्थं कुप्यसि सर्वं सहिष्णुः ।
१५ सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं, सर्वत्रोत्सृज भेद[1] ज्ञानम् ॥८॥

मोहिं तोहिं सबमें हरि एका, नाहक कोप करो धरि टेका ।
सबमे आतमही लखिलीजै, भेद–बुद्धि सगरो तजिदीजै ॥८॥

प्राणायामं प्रत्याहारं नित्या-नित्य विवेक विचारम् ।
जाप्य समेत समाधि विधानं, कुर्व वधानं महदवधानम् ॥९॥

प्रान गती अरु प्रत्याहारा, नित्य अनित्य बिवेक बिचारा ।
सहित जपादि समाधि बिधाना, सावधान ह्वै करु अवधाना ॥९॥

नलिनी दल गत जलवत्तरलं[2], तद्वज्जीवन मतिशय चपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमान ग्रस्तं, लोकं शोकहतञ्च समस्तम् ॥१०॥

कमल पत्र जल बूंद समाना, चंचल जीवन टुक न ठिकाना ।
यहि अभिमान रोगमय जानो, लोक समस्त सोकहत मानो ॥१०॥

---

१ "भेदाज्ञानम्" भी पाठ है । २ "सलिलं" पाठ भी जलवत् के स्थान में है ।

काऽते ऽष्टादश देशे चिन्ता ? वातुल ! तव किन्नास्ति नियन्ता ?
यस्त्वां हस्ते सुदृढनिबद्धं, बोधयते प्रभवादि विरुद्धम् ॥११॥

कौन अठारह[1] देसनि चिंता ? पागल ! का नहि तोर नियंता ? ।
जो तुहिं हाथ बांधि समुझावत, सृष्टि बिरुद्ध बात बतलावत ॥११॥

गुरु चरणाम्बुज निर्भरभक्तः, संसारा दचिराद्भव मुक्तः ।
सेन्द्रिय मानस नियमादेवं, द्रक्ष्यसि निज हृदयस्थं देवम् ॥१२॥

गुरु पद पंकज पूरन भक्ता, होहिं सीघ्र जग जन्म विमुक्ता ।
इन्द्रिय सहित चित्त गति रोको, निज हृदय स्थित देव बिलोको ॥१२॥

द्वादश पञ्जरिकामय एषः, शिष्याणां कथितोह्युपदेशः ।
येषां चित्तेनैव विवेक,स्तेपच्यन्ते नरक मनेकम् ॥१३॥

---

[1] पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, मन, बुद्धि और आत्मा । १८

बारह पंजरिका से येहू, शिष्यन हित उपदेस करेहू ।
जिनके चित्त न होत बिवेका, ते नर पक (र) ते नरक अनेका ॥१३॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य्यं विरचितं द्वादश पञ्जरिका
स्तोत्रं समाप्तम् ।

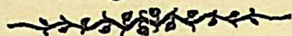
यह शंकराचार्य मुख बानी,
सो पढ़त पढ़त होत नर ज्ञानी ।
यहिते नारायण पति शर्म्मा,
भाषा बद्ध कियो तजि भर्म्मा ॥१॥

श्रीत्रिपाठि नारायण पति शर्मकृतो भाषानुवादो ऽपि समाप्त एवेति
शुभम्भूयात् ।

शास्त्र्

श्रीशीवन्दे ।

॥अथ चर्पटपञ्जरिका स्तोत्रम् ॥



दिनमपि रजनी सायं प्रातः । शिशिर वसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छ त्यायु-। स्तदपि न मुञ्च त्याशा वायुः ॥१॥

सांझ सवेर दिवस पुनि राती । सिसिर बसन्त ऋतू फिरि आती ।
खेलत काल जाति चलि आयू । तबहुँ न छाड़ति आशा वायू ॥१॥

भज गोविन्दं भज गोविन्दं । गोविन्दं भज मूढ़मते । (ध्रुवपद)
प्राप्ते सन्निहिते मरणे । नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे ॥२॥

सुनहु मन्दमति कहौं बुझाई । भजहु सदा गोविन्दहि भाई ।
मृत्यु जबै नियरेचलि आवै । तब[1] नहिं डुकृञ् करन बचावै ॥२॥

---

[1] तब कुछ [illegible] नहीं बचावै । (पाठ अच्छा होगा)।

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू। रात्रौ चिबुक समर्पित जानुः।
करतल भिक्षा तरुतल वास। स्तदपि न मुञ्चत्याशा पाशः ॥३॥

आगे आगि पीठ पर भानू। राति चिबुक से लागलि जानू।
करपर भीख पेड़तर वासा। तबहुँ न छाड़ति आसा फांसा ॥३॥

याव द्वित्तो पार्जन सक्त। स्तावन्निज परिवारो रक्तः।
पश्चाद्धावलि जर्जरदेहे। वार्तां पृच्छंति कोऽपि न गेहे ॥४॥

जबतक धन अर्जित करि लाता। तबतक सब कुटुम्ब का नाता।
पाछे झुलझुल तनु जब होई। घरमें पूछत बात न कोई ॥४॥

जटिली मुण्डी लुञ्चित केशः। काषायाम्बर बहु कृत वेषः।
पश्यन्नपिच न पश्यति मूढ़। उदर निमित्तं कृत बहुवेषः ॥५॥

जटिली मुण्डी नोचित केसा। पहिरि कसाय वस्त्र कृत भेसा।
देखतहूँ नहिं देखैं मूढ़ा। पेट हेत करि भेष निगूढ़ा ॥५॥

भगवद्गीता किञ्चिदधीता । गङ्गाजल लव कणिका पीता ।
सकृदपि यस्य मुरारि समर्चा । तस्य यमः किं कुरुते चर्चा ॥५॥

जे कुछ भगवत गीता पढ़हीं । वा गङ्गाजल कनिका पियहीं ।
एकबार जिन हरि पद अरचा । जम नहिं करते तिनकी चरचा ॥६॥

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं । दशन विहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं । तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम् ॥७॥

झूले अङ्ग बार सब पाके । मुख मै दांत एक नहिँ जाके ।
सो बुढ़वा लकड़ी ले चलता । नहिं आशासे पिंड उबरता ॥७॥

बालस्तावत्क्रीड़ा सक्तः । स्तरुण स्तावत्तरुणी रक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्ता मग्नः । परमे ब्रह्मणिकोऽपिन लग्नः ॥८॥

लड़िका खेल कूदमें लागा । तरुन भये तरुनी रस पागा ।
बूढ़ होत चिंतानल जागा । परब्रह्ममें कोइ न लागा ॥८॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं। पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे भव दुस्तारे। कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ॥९॥

फिर फिर जनना फिर फिर मरना। फिर फिर मात उदर में सयना।
यह असार संसार नकारो। नाथ ! कृपा कर मोहिं उबारो ॥९॥

पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः। पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं। तदपि न मुञ्चत्याशा मर्षम् ॥१०॥

रात दिवस फिरि फिरि चलि आवत। मास पच्छ निज रूप दिखावत।
अयन वर्ष सबही बित जाते। तबहुँ न आस द्वेष बिलगाते ॥१०॥

वयसि गते कः काम विकारः। शुष्के नीरे कः कासारः।
नष्टे द्रव्ये कः परिवारो। ज्ञाते तत्वे कः संसारः॥११॥

बीते वय कहँ काम विकारा। सुखे नीरकहँ को कासारा।
द्रव्य नहीं तब कहँ परिवारा। तत्व ज्ञान पर कहँ संसारा ॥११॥

नारी स्तनभर नाभि निवेशं । मिथ्या माया मोहावेशम् ।
एतन्मांस वसादि विकारं । मनसि विचारय वारंवारम् ॥१२॥

कामिनि कुचभर नाभि निवेसा । झूठै मायामोहा वेसा ।
यह सब चरबी मांस विकारा । मन में सोचहु बारहिंबारा ॥१२॥

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः । का मे जननी को मे तातः ।
इति परिभावय सर्व मसारं । विश्वं त्यक्त्वा स्वप्न विचारम् ॥१३॥

को तुम? को हम ? कहँ से आये ? को मांता ? को बाप कहाये ? ।
करु विचार यह सकल असारा । तजहु बिस्व जिमि स्वप्न बिचारा ॥१३॥

गेयं गीता नाम सहस्रं । ध्येयं श्रीपति रूप मजस्रम् ।
नेयं सज्जन सङ्गति चित्तं । देयं दीन जनाय च वित्तम् ॥१४॥

सहस नाम अरु गीता गाना । श्रीपति रूप सदा कर ध्याना ।
सज्जन संगति में चित कीजे । दीन जनन को निज धन दीजे ॥१४॥

यावज्जीवो निवसति देहे । कुशलं तावत्पृच्छति गेहे ।
गतवति वायौ देहापाये । भार्या बिभ्यति तस्मिन् काये ॥१५॥

जबलगि जीव बसै तन मांही । तबलगि पूछत कुसल घरांही ।
निकसे वायु देह के नासे । नारिहु डरति ताहिके पासे ॥१५॥

सुखतः क्रियते रामा भोगः । पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः ।
यद्यपि लोके मरणं शरणं । तदपि न मुञ्चति पापाचरणम् ॥१६॥

सुख से करत नारि सन भोगा । अन्त सरीर होत बन रोगा ।
यद्यपि मरन सरन जगमांही । तदपि न पाप कर्म तजि नांहीं ॥१६॥

रथ्या चर्पट विरचित कन्थः । पुण्या पुण्य विवर्जित पन्थः ।
नाहं नत्वं नायं लोक- । स्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥१७॥

चिरकुट बीनि बनाई कंथा । पाप पुन्य से वर्जित पंथा ।
हम नहिं तुम नहिं नहिं यह लोक । तो फिर काहे करते सोक ? ॥१७॥

कुरुते गङ्गासागर गमनं । व्रत परिपालन मथवा दानम् ।
ज्ञान विहीने सर्व मनेन । मुक्तिर्नभवति जन्म शतेन ॥१८॥

गङ्गासागर यात्रा करते । व्रत उपवास दान आचरते ।
बिना ज्ञान इन सबते नांही । होति मुक्ति सौजन्महु मांहीं ॥१८॥

(भज गोविन्दं २ गोविन्दं भज मूढ़मते !!)

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्य्य विरचितं चर्पट पञ्जरिका स्तोत्रं समाप्तम् ॥

॥ श्रीत्रिपाठि नारायण पति शर्म्म कृतो ॥

भाषानुवादोऽपि समाप्तः ।

। शुभम्भूय्यात् ।

श्रीशीघन्दे ।

॥ अथ षश्वरत्न मालिका स्तोत्रम् ॥



वेदो नित्य मधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां,
तेने शस्य विधीयता मपचितिः काम्ये मति स्त्यज्यताम् ।
पापौघः परिधूयतां भव सुखे दोषोऽनुसन्धीयता,
मात्मेच्छा व्यवसीयतां निज गृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम् ॥१॥

वेदहि नित्य पढ़े चहिये, अरु वाके कहे सब कर्म करीजे,
वाहिते ईश्वर तोष करो, सब काम बिकारन को तजि दीजे ।

पाप समूहहिं दूर करो, भव के सुख दोष भरे लखि लीजै,
आतम ज्ञान बढ़ावनो है, निज मन्दिरते तुरतै चलि दीजै ॥ १ ॥

सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्ति र्दृढा धीयतां
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु संन्यस्यताम् ।
सद्विद्वा नुपसर्प्यता मनुदिनं तत्पादुके सेव्यतां,
ब्रह्मै काक्षर मर्थ्यतां श्रुति शिरो वाक्यं समाकर्ण्यताम् ॥२॥

कीजिय संगति सज्जन की, भगवन्तकि भक्ति दृढ़ा करि लीजिय,
लीजिय शांति शमादि बटोरिके, कर्म कठोर सबै तजि दीजिय ।
दीजिय आदर पंडित को नित, जाय उन्हीं कर पादुक सेवय,
सेवय ब्रह्म एकाक्षर को, श्रुति के सिर[1] वाच्यन को श्रुत कीजिय ॥ २ ॥

वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुति शिरः पक्षः समाश्रीयतां,
दुस्तर्का त्सुविरम्यतां श्रुतिमत स्तर्कोऽनुसन्धीयताम् ।

---

[1] "तत्त्वमसि" इत्यादि १२ महावाक्य;—अथवा उपनिषद ।

ब्रह्मास्मीति विभाव्यतामहरहो गर्वः परित्यज्यतां,
देहेऽहंमति रुज्झतां बुधजनै र्वादः समुत्सृज्यताम् ॥३॥

अर्थ विचारिय वाक्यन के श्रुति के, सिर पक्ष समाश्रय कीजिय,
तर्क बुरे से विराम लहो, श्रुतिमान के तर्क समर्थन कीजिय ।
"ब्रह्म अहौं" यह भावय जू, चित में कबहूं मति गर्वहिं कीजिय,
देह में छांडि अहंमति को, बुध लोगन सो न विवादहु कीजिय ॥ ३ ॥

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां,
स्वाद्वन्नं नच याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन सन्तुष्यताम् ।
औदासीन्य मभीप्सतां जन कृपा नैष्ठुर्य्य मुत्सृज्यतां,
शीतोष्णादि विषह्यतां नतु वृथा वाक्यं समुच्चार्यताम् ॥४॥

भूखहि व्याधि दवा करिकै, हररोज दवा सम भीखहि चाखिय,
मांगिय स्वादुक अन्न कभू नहिं, जोइ मिलै वहि तोषिकै राखिय ।

२८

चाहिय नित्य उदासिनता, जनि लोगन की करुना अभिलाषिय,
सीत सदा गरमी सहिये, कबहूं मति व्यर्थहि बात को भाषिय ॥ ४ ॥

एकान्ते सुख मास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां,
पूर्णात्मा सुसमीक्षतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम् ।
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितिबला न्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां,
प्रारब्धं त्विह भुज्यता मथ पर ब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥५॥

वास एकन्त करो सुख से, परमेश्वर ही पर चित्त धरीजै,
पूरन आतमहि देखु भले, सगरो जग तन्मयही लखिलीजै ।
पूरब जन्म के कर्म गवाँ, चिति के बल उत्तर मेल न कीजै,
प्रारब्धे करि भोग इहैं, पुनि ब्रह्महिमें लवलीन बनीजै ॥ ५ ॥

इति श्री मच्छंकराचार्य विरचितं पञ्चरत्न मालिका
स्तोत्रं समाप्तम् ।

श्री त्रिपाठि नारायण पतिशर्म कृतो भाषानुवादोऽपि समाप्तः शुभम्भूयात् ।

॥ श्रीशिवन्दे ॥

॥ श्रीपञ्चाक्षर स्तोत्रम् ॥



नागेन्द्र हाराय त्रिलोचनाय, भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
देवाधि देवाय दिगम्बराय, तस्मै नकाराय नमः शिवाय ॥१॥

नागन हार लसैं गल में, सुभ लोचन तीसर भाल में राजत,
भस्महि लेपि किये अँगराग, महेश्वरके सगरो तन गाजत ।
देवन के अधिदेव वही, पर आपु दिगंबर रूपहि साजत,
मैं शिव ! तोहिं प्रनाम करौं, जिहि मंत्र के आदि नकार विराजत ॥ १ ॥

मातङ्ग चर्माम्बर भूषणाय, समस्त गीर्वाणगणार्चिताय।
त्रैलोक्य नाथाय पुरान्तकाय, तस्मै मकाराय नमः शिवाय॥२॥

मातँग खालकि ऊपरना तन, ऊपर सोहत है अतिनीको,
देव सबै जुरि पूजत हैं पद, पंकज पारबती-पति जी को।
तीनहुँ लोकन के वह नाथ, हने त्रिपुरासुर के पुरही को,
बन्दत हौं शिवशंकर को, जिहि मंत्र मकार बिना अति फीको ॥ २ ॥

शिवा मुखाम्भोज विलासनाय, दक्षस्य यज्ञस्य विनाशनाय।
चन्द्रार्क वैश्वानर लोचनाय, तस्मै शकाराय नमः शिवाय॥३॥

शिव पारबती मुख पंकज के, ढिग भौंर समान विलास करैं,
उनही अति दर्पित दक्षहु के, सब जज्ञ विनाशित कै बिचरैं।
मृग लांछन सूरज औ अगिनी, यह तीनहु लोचन धान धरैं,
प्रनवौं नित मान्य महेश्वर को, जहँ मंत्र शकार बिना न भरै ॥ ३ ॥

वशिष्ठ कुम्भोद्भव गौतमात्रि,-मुनीन्द्र विद्याधर सेविताय ।
३१ श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय, तस्मै वकाराय नमः शिवाय ॥४॥

जिनसें सब इन्द्रिय को करिबै, मुनिराज वशिष्ठ अगस्त्य विज्ञानी,
मुनि गौतम अत्रि तथा विद्याधर, सेवत जोरि सदाजुग पानी ।
वृषभध्वज के गलमें विष सोहत, सो जनु नीलम हार बखानी,
नमिहौं सतबार विचारत हौं न वकार बिना तुव मंत्रखानी ॥ ४ ॥

यज्ञ स्वरूपाय जटाधराय, पिनाक हस्ताय सनातनाय ।
नित्याय शुद्धाय निरञ्जनाय, तस्मैयकाराय नमः शिवाय ॥५॥

जग्य सरूप सदा तुम नाथ । सदैव जटाधर रूप बनावत,
हाथ पिनाकहि साथ रहै, तुम देव सनातन वेद बतावत ।
नित्य निरंजन हौ तुमही, तुमसे नहिं शुद्ध कछु कहवावत,
मैं न नमतौं प्रनदा रति भंजन । मंत्र यकारहि अंत सुनावत ॥ ५ ॥

पञ्चाक्षरमिदं स्तोत्रं, यः पठेच्छिव सन्निधौ ।
शिव लोक मवाप्नोति, शिवेन सह मोदते ॥६॥

पंचाक्षर अस्तोत्र यह, पढै शंभु के पास ।
लहै वास कैलास में, शिव सँग करत हुलास ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचितं शिव पञ्चाक्षर स्तोत्रं समाप्तम् ॥

यह पंचाक्षर वर्म, रचित शंकराचार्य कर ।
नारायण पति शर्म, भाषा मँह अनुवाद किय ॥ ७ ॥

श्रीत्रिपाठि नारायणपति शर्म निर्मितो भाषानुवादश्च सम्पूर्णः ।

शिवमस्तु ।

काशी ।

बाबू देवकीनन्दन खत्री द्वारा प्रकाशित ।

[illegible] लहरी प्रेस में मुद्रित ।

॥अथ वेदांतस्तोत्रसंग्रह प्रारंभः॥

वेदांतस्तोत्रसंग्रहस्य द्वितीयोभागः

सूचीपत्रं

श्रीसच्चिदानंदात्मने नमः॥अथ हरिस्तुति प्रारंभः॥
स्तोष्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं यस्मिन्नेतत्संसृतिचक्रं भ्रमतीत्थम्॥ यस्मिन्दृष्टे नश्यतितत्संसृतिचक्रं तं संसारध्वांतविनाशं हरिमीडे॥ १॥ यस्यैकांशादित्थमशेषं जगदेतत् प्रादुर्भूतं येनपिनद्धं पुनरित्थम्॥येन व्याप्तं येन विबुद्धं सुखदुःखै स्तंसंसारध्वांतविनाशं हरिमीडे॥२॥सर्वज्ञो यो यश्च हि सर्वः सकलो यो यश्चानंदोऽनंतगुणो यो गुणधामा॥ यश्चाव्यक्तो व्यस्तसमस्तः सदसद्यस्तं संसारध्वांत० ॥३॥ यस्मादन्यंनास्त्यपि नैवं परमार्थं दृश्या-

वे० दन्यो निर्विषयज्ञानमयत्वात्॥ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीन- स्तो०
॥२॥ नोपि सदा ज्ञ स्तं संसार० ॥ ४ ॥ आचार्येभ्यो
लब्धसुसूक्ष्माच्युततत्त्वा वैराग्येणाभ्यासबलाच्चैव
द्रढिम्ना ॥ भक्त्यैकाग्रध्यानपरा यं विदुरीशं तंसंसा-
र० ॥५॥ प्राणानायम्योमितिचित्तं हृदि रुध्वा ना-
न्यत्स्मृत्वातत्पुनरत्रैव विलाप्य ॥ क्षीणे चित्ते भाहृ-
शिरस्मीति विदुर्यं तंसंसार० ॥ ६ ॥ यं ब्रह्माख्यं
देवमनन्यं परिपूर्णं हृत्स्थं भक्तैर्लभ्यमजं सूक्ष्ममत-
र्क्यं ॥ ध्यात्वात्मस्थं ब्रह्मविदो यं विदुरीशं तंसंसा
र० ॥ ७ ॥ मात्रातीतं स्वात्मविकाशात्मविबोधं ॥२॥

ज्ञयोतीतं ज्ञानमयं हृद्युपलभ्यम् ॥ भावग्राह्यानंदमन
न्यं च विदुर्यं तं संसार० ॥ ८ ॥ यद्यद्वेद्यं वस्तुस
तत्त्वं विषयाख्यं तत्तद्ब्रह्मैवेति विदित्वा तदहं च ॥
ध्यायंत्येवं यं सनकाद्या मुनयोऽजं तं संसार० ॥ ९ ॥
यद्यद्वेद्यं तत्तदहं नेति विहाय स्वात्मज्योतिर्ज्ञानमया-
नंदमवाप्य ॥ तस्मिन्नस्मीत्यात्मविदो यं विदुरीशं
तं संसार० ॥ १० ॥ हित्वा हित्वा दृश्यमशेषं सवि
कल्पं मत्वा शिष्टं भादृशिमात्रं गगनाभं ॥ त्यक्त्वादे
हं यं प्रविशंत्य च्युतभक्ता स्तंसंसार० ॥ ११ ॥ सर्व-
त्रास्ते सर्वशरीरी न च सर्वः सर्वं वेत्त्येवेह न यं वेत्ति च

 सर्वः॥सर्वत्रातर्यामितयेत्थं यमयन्य॥स्तं संसार०
 ॥१२॥सर्वं दृष्ट्वा स्वात्मनि युक्त्या जगदेतद् दृष्ट्वात्मानं
चैवमजं सर्वजनेषु ॥ सर्वात्मैकोऽस्मी तिविदुर्यं जन
हृत्स्थं तं संसार० ॥ १३ ॥ सर्वत्रैकः पश्यति जि
घ्रत्यथ भुंक्ते स्प्रष्टा श्रोता बुध्यति चेत्याहुरिमं यं ॥
साक्षी चास्ते कर्तृषु पश्यन्निति चान्ये तं संसार०॥
॥१४॥पश्यन् शृण्वन्नत्र विजानन् रसयनूसन् जि
घ्रन्बिभ्रद्देहमिमं जीवतयेत्थं॥इत्यात्मानं यं विदुरीशं
विषयज्ञं तं संसार० ॥ १५ ॥ जाग्रद्दृष्ट्वास्थूलप
दार्थानथमायां दृष्ट्वास्वप्नेथापिसुषुप्तौसुखनिद्रां ॥

इत्यात्मानं वीक्ष्यमुदास्तेचतुरीये तं संसार०॥१६॥
पश्यन्शुद्धोप्यक्षरएकोगुणभेदान्नानाकारान् स्फा
टिकवद्भातिविचित्रः ॥ भिन्नश्छिन्नश्चायमजःकर्म
फलैर्य स्तंसंसार० ॥ १७ ॥ ब्रह्माविष्णूरुद्रहुता-
शौरविचंद्रा विंद्रोवायुर्यज्ञइतीत्थंपरिकल्प्य ॥ एकं
संतंयंबहुधाहुर्मतिभेदा त्तं संसार०॥१८॥ सत्यंज्ञा-
नं शुद्धमनन्तंव्यतिरिक्तं शांतंगूढं निष्कलमानंदम-
नन्यं॥इत्याहादौ यंवरुणोऽसौ भृगवेजं तं संसार०
॥१९॥कोशानेतान्पंचरसादीऽनतिहाय ब्रह्मास्मीति
स्वात्मनिनिश्चित्य दृशिस्थः॥ पित्रा दिष्टो वेदभृगुर्यं

यजुरंते तं संसार०॥२०॥येनाविष्टो यस्यचशक्त्या
यदधीनः क्षेत्रज्ञोयं कारयिता जंतुषुकर्त्तुः ॥ कर्त्ता
भोक्तात्मात्रहिचिच्छक्त्यधिरूढ स्तंसंसार०॥२१॥
सृष्ट्वासर्वं स्वात्मतयैवेत्थमतर्क्यं व्याप्याथांतःकृत्स्न
मिदंसृष्टमशेषं॥सच्चत्यच्चाभूत्परमात्मासयएक स्तं
संसार० ॥ २२ ॥ वेदांतैश्चाध्यात्मिकशास्त्रैश्चपुरा
णैः शास्त्रैश्चान्यैःसात्वततंत्रैश्चयमीशं ॥ दृष्ट्वाथांत
श्चेतासिबुध्वाविविशुर्यं तं संसार० ॥ २३ ॥ श्रद्धा
भक्तिध्यानशमाद्यैर्यतमानैर्ज्ञातुंशक्योदेवइहैवाशुय ॥४॥
ईशः ॥ दुर्विज्ञेयोजन्मशतैश्चापिविनातै स्तंसंसार॥

॥ २४ ॥ यस्यातकर्थं स्वात्मविभूतेः परमार्थं सर्वं ख-
ल्वित्यत्र निरुक्तं श्रुतिविद्भिः ॥ तज्जादित्वादबधित-
रंगाभमभिन्नं तं सार० ॥२५॥ दृष्ट्वा गीतास्वक्षरतत्त्वं
विधिनाजं भक्त्या गुर्व्या लक्ष्य हृदिस्थं दृशि मात्रं ॥
ध्यात्वा तस्मिन्नस्म्यहमित्यत्र विदुर्यं तं संसार०
॥ २६ ॥ क्षेत्रज्ञत्वं प्राप्य विभुः पंचमुखैर्यो भुंक्तेऽजस्रं
भोग्यपदार्थान् प्रकृतिस्थः ॥ क्षेत्रेक्षेत्रेऽप्स्विदुवदेको
बहुधाऽऽस्ते तं संसार० ॥२७॥ युक्त्यालोच्य व्या-
सवचांस्यत्र हि लक्ष्यःक्षेत्रक्षेत्रज्ञांतरविद्भिः पुरुषा-
ख्यः ॥ योहं सोसौ सोस्म्यहमेवेति विदुर्यं तं संसा०

॥२८॥एकीकृत्यानेकशरीरस्थमिमं ज्ञं यं विज्ञायेहै-
व स एवाशु भवंति॥ यस्मिँल्लीना नेह पुनर्जन्म लभंते
तं संसार० ॥२९॥ द्वंद्वैकत्वं यच्च मधु ब्राह्मणवाक्यैः
कृत्वा शक्रोपासनमासाद्य विभूत्या॥ योऽसौ सोहं
सोस्म्यहमेवेति विदुर्यं तं संसार ०॥ ३० ॥ योयं
देहे चेष्टयितांतःकरणस्थः सूर्ये चासौ तापयिता सो-
स्म्यहमेव ॥ इत्यात्मैक्योपासनया यं विदुरीशं तं सं-
सार०॥३१॥ विज्ञानांशो यस्य सतः शक्त्यधिरूढो
बुद्धिर्बुध्यत्यत्र बहिर्बोध्यपदार्थान्॥ नैवांतस्थं बुध्य-
ति यं बोधयितारं तं संसार०॥३२॥कोयं देहे देव इती

त्थं सुविचार्य ज्ञाता श्रोता नंदयिता चैष हि देव: इत्या-
लोच्य ज्ञांश इहास्मीति विदुर्यं तं संसार० ॥ ३३ ॥
को ह्येवान्यादात्मनि न स्यादयमेष: ह्येवानंद: प्राणि-
ति चापानिति चेति॥इत्यस्तित्वं वक्त्युपपत्त्या श्रुति-
रेषा तंसंसार०॥३४॥प्राणो वाऽहं वाक्श्रवणादीनि
मनो वा बुद्धिर्वाऽहं व्यस्त उताहोपि समस्त:॥इत्या-
लोच्य ज्ञप्तिरिहास्मीति विदुर्यं तं संसासार० ३५॥
नाहं प्राणो नैव शरीरं न मनोहं नाहं बुद्धिर्नाहमहंका-
रधियौ च॥योत्र ज्ञांश:सोस्म्यहमेवेतिविदुर्यं तं संसा-
र० ॥३६॥ सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत्सूक्ष्मं

नित्यं तत्त्वमसीत्यात्मसुताय॥साम्नामंते प्राहपिता यं
विभुमाद्यं तं संसार० ॥३७॥ मूर्तामूर्ते पूर्वमपोह्याथ
समाधौ दृश्यं सर्वं नेति च नेतीति विहाय॥ चैतन्यांशे
स्वात्मनि संतं च विदुर्यं तं संसार० ॥३८॥ ओतं
प्रोतं यत्र च सर्वं गगनांतं योऽस्थूलानण्वादिषु सिद्धो-
ऽक्षरसंज्ञः॥ज्ञाताऽतोन्यो नेत्युपलभ्यो न च वेद्यस्तं
संसार० ॥३९॥ तावत्सर्वं सत्यमिवाभाति यदेत-
द्यावत्सोऽस्मीत्यात्मनि योज्ञोन हि दृष्टः॥दृष्टे तस्मिन्
सर्वमसत्यं भवतीदं तं संसार० ॥४०॥ रागामुक्तं
लोहयुतं हेम यथाऽग्नौ योगाष्टांगैरुज्ज्वलितज्ञानम-

थाग्नौ दग्ध्वाऽऽत्मानं ज्ञं परिशिष्टं च विदुर्यं तं संसार०
४१ यं विज्ञानज्योतिषमाद्यं सुविभांतं त्हद्यर्केंद्वऽग्न्यो
कसमीड्यं तडिदाभं ॥ भक्त्याऽऽराध्यैहैव विशंत्या-
त्मनि संतं तं संसार ० ॥४२ ॥ पायाद्भक्तं स्वात्म-
नि संतं पुरुषं यो भक्त्या स्तौतीत्यांगिरसं विष्णु-
रिमं मां । इत्यात्मानं स्वात्मनि संत्हत्य सदैकस्तं
संसार ० ॥४३॥ इत्थं स्तोत्रं भक्तजनेड्यं भवभीति-
ध्वांतार्काभं भगवत्पादीयमिदं यः॥ विष्णोर्लोकं पठ-
ति शृणोति व्रजति ज्ञो ज्ञानं ज्ञेयं स्वात्मनि चाप्नोति
मनुष्यः॥४४॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य

श्रीमच्छंकराचार्यविरचिता हरिस्तुतिः समाप्ता ॥ ॥ ॥
॥ श्रीसच्चिदानंदाय नमः ॥ श्रीसद्गुरुभ्यो नमः ॥
अथात्मबोधप्रारंभः ॥ तपोभिः क्षीणपापानां शांता
नां वीतरागिणां ॥ मुमुक्षूणामपेक्ष्योयऽमात्मबोधो वि
धीयते ॥ १ ॥ बोधोन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैक-
साधनं ॥ पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सि-
ध्यति ॥ २ ॥ अविरोधितया कर्म नाविद्यां विनिवर्त्तये-
त् ॥ विद्याविद्यां निहंत्येव तेजस्तिमिरसंऽघवत् ॥ ३ ॥
परिच्छिन्न इवाज्ञाना त्तन्नाशे सति केवलः ॥ स्वयं प्र-
काशते ह्यात्मा मेघापायेंशुमानिव ॥ ४ ॥ अज्ञानकलुषं

जीवं ज्ञानाभ्यासाद्धि निर्मलं॥कृत्वाज्ञानं स्वयं नश्ये-
ज्जलं कतकरेणुवत् ॥५॥संसारः स्वप्नतुल्यो हि रा-
गद्वेषादिसंकुलः ॥ स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे स-
त्यसद्भवेत्॥६॥तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारज-
तं यथा॥यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयं॥७॥
सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः॥व्य-
क्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत्॥८॥यथा-
काशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः॥ तद्भेदाद्भि-
न्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः॥९॥नानोपाधिवशा-
देव जातिवर्णाश्रमादयः ॥ आत्मन्यारोपितास्तोये

रसवर्णादिभेदवत् ॥१० ॥ पंचीकृतमहाभूतऽसंभवं
कर्मसंचितं ॥शरीरं सुखदुःखनां भोगायतनमुच्यते
॥११॥ पंचप्राणमनोबुद्धि दशेंद्रियसमन्वितं ॥ अपं-
चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनं॥१२॥अनाद्य-
विद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ॥ उपाधित्रित-
याद्न्यऽमात्मानमवधारयेत्॥१३॥पंचकोशादियो-
गेनतत्तन्मय इव स्थितः॥शुद्धात्मा नीलवस्त्रादि योगे-
न स्फटिको यथा॥१४॥वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं
युक्त्यावघाततः॥आत्मानमंतरं शुद्धं विविच्यात्तंदुलं
यथा॥१५॥सदा सर्वगतोप्यात्मा न सर्वत्रावभासते॥

बुद्धावेववाभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिंबवत् १६ देहेंद्रिय-
मनोबुद्धि प्रकृतिभ्यो विलक्षणं॥तद्वृत्तिसाक्षिणं वि
द्यादात्माऽनंराजवत्सदा १७ व्यापृतेष्विंद्रियेष्वात्मा
व्यापारीवाविवेकिनां॥दृश्यतेभ्रेषु धावत्सु धावन्निव
यथा शशी॥१८॥आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेंद्रियम-
नोधियः॥स्वकीयार्थेषु वर्त्तंते सूर्यालोकं यथा जना-
॥१९॥देहेंद्रियगुणान्कर्माऽण्यमले सच्चिदात्मनि ॥
अध्यस्यंत्यविवेकेन गगने नीलतादिवत्॥२०॥अ-
ज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादी निचात्मनि॥कल्प्यं-
तेंबुगते चंद्रे चलनादि यथांभसः ॥२१॥ रागेच्छा

वे० सुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्त्तते॥सुषुप्तौ नास्तितत्- स्तो०
न्नाशे तस्माद्बुद्धस्तु नात्मनः ॥२२॥ प्रकाशोऽर्कस्य
॥९॥ तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता॥स्वभाव सच्चिदानंदनि-
त्य निर्मलतात्मः॥२३॥आत्मनःसच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृ-
त्तिरिति द्वयं॥संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्त्तते
२४आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्त्ता द्रष्टेति मुह्यति ॥२५॥
रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत्॥नाहं जीवः
परात्मेति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत्॥२६॥आत्मावभा- ॥९॥
सयत्येको बुध्यादीनींद्रियाणि हि॥ दीपो घटादिव

त्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ॥२७॥ स्वबोधे नान्य-
बोधेच्छ बोधरूपतयात्मनः ॥न दीपस्यान्यदीपेच्छा
यथा स्वात्मा प्रकाशते॥२८॥निषिध्य निखिलोपा-
धीन्नेति नेतीति वाक्यतः॥विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जी-
वात्मपरमात्मनोः ॥२९॥ अविद्यकं शरीरादि दृश्यं
बुद्बुदवत् क्षरं॥एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्म-
लं॥३०॥देहान्यत्वान्नमे जन्मजराकार्श्यलयादयः
शब्दादिविषयैःसंगो निरिंद्रियतया न च॥ ३१॥अ-
मनस्त्वान्नमे दुःखरागद्वेषभयादयः॥अप्राणो ह्यम-
नाःशुभ्र इत्यादिश्रुतिशासनात् ॥३२॥निर्गुणो नि-

 ष्क्रिया नित्यो निर्विकल्पो निरंजनः॥निर्विकारो नि
 राकारो नित्यमुक्तोस्मि निर्मलः॥३३॥अहमाकाश-
वत्सर्व बहिरंतर्गतोच्युतः॥सदा सर्वसमः शुद्धो निः
संगो निर्मलोचलः ॥३४॥ नित्यशुद्धविमुक्तैकमखं
डानंदमद्वयं॥सत्यं ज्ञानमनंतं यत् परं ब्रह्माहमे वत-
त्॥३५॥ एवं निरंतराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वास-
ना॥हरत्यविद्या विक्षेपान्रोगानिव रसायनं॥३६॥
विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेंद्रियः ॥भाव-
येदेकमात्मानं तमनंतमनन्यधीः॥३७॥ आत्मन्ये-
वाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः॥भावयेदेक

मात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥३८॥ रूपवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित् ॥ परिपूर्णचिदानंदस्वरूपेणावतिष्ठते॥ ३९ ॥ ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परात्मनि न विद्यते ॥ चिदानंदैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि ॥ ॥४०॥ एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते॥ उदितावगतिर्ज्वाला सर्वाज्ञानेंधनं दहेत् ॥ ४१ ॥ अरुणेनेव बोधेन पूर्वसंतमसे हृते ॥ तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥४२॥ आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्तवदविद्यया॥ तन्नाशे प्राप्तवद्भाति स्वकंठाभरणं यथा॥४३॥ स्थाणौ पुरुषवद्भ्रांत्या कृताब्रह्माणि

जीवता॥जीवस्य तात्विके रूपे तस्मिन् दृष्टे निवव-
र्त्तते॥४४॥तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानमंजसा ॥
अहंममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥४५॥
सम्यग्विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितं ॥
एकं च सर्वमात्मान दीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥४६॥आ
त्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोन्यन्न विद्यते ॥ मृदो यद्वद्घ-
टादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते॥४७॥जीवन् मुक्तस्तु
तद्विद्वान् पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत् ॥ स च्चिदानंदरूप
त्वा द्भवेद्भ्रमरकीटवत्॥४८॥ तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा
रागद्वेषादिराक्षसान्॥योगी शांतिसमायुक्तो ह्यात्मा

रामो विराजते ॥४९॥ उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्नलिप्तो
व्योमवन्मुनिः॥सर्वविन्मूढवत्तिष्ठे दसक्तो वायुवच्चरेत्
॥५०॥बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्वृतः॥
घटस्थदीपवत्स्वच्छः स्वांतरेव प्रकाशते ॥ ५१ ॥
उपाधिविलयाद्विष्णो निर्विशे षंविशेन्मुनिः॥जले
जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसिवा यथा॥५२॥ य-
ल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखं॥यज्ज्ञा-
नान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥५३॥ यद्दृष्ट्वा
नपरं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ॥ यज्ज्ञात्वा न परंज्ञेयं
तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥५४॥ तिर्यगूर्ध्वमधःपूर्णं स

 च्चिदानंदमव्ययम् ॥ अनंतं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्य-
 वधारयेत् ॥५५॥ अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदांतैर्लक्ष्यते
व्ययं ॥ अखंडानंदमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥५६॥
अखंडानंदरूपस्य तस्यानंदलवाश्रिताः ॥ ब्रह्माद्या-
स्तारस्तस्येन भवस्यानंदिनोऽखिलाः॥५७॥तद्युक्त-
मखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः ॥ तस्मात्सर्वगतं
ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले॥५८॥अनण्वस्थूलमन्ह-
स्व मदीर्घमजमव्ययं ॥ अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मे
त्यवधारयेत् ॥५९॥ यद्भासा भासतेर्कादि र्भास्यैर्य
त्तुन भास्यते॥येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्

॥६०॥ स्वयमंतर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत्॥
ब्रह्म प्रकाशते वन्हि प्रतप्तायसपिंडवत्॥ ६१ ॥ ज
गद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोन्यन्नकिंचन॥ ब्रह्मान्यद्भाति
चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका ॥ ६२ ॥ दृश्यतेश्रू-
यते यद्यद्ब्रह्मणो न्यन्नतद्भवेत् ॥ तत्त्वज्ञानाच्चऽतद्ब्रह्म
सच्चिदानंदमद्वयं ॥६३॥सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानच
क्षुर्निरीक्षते॥अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वंतं भानुमंधवत्
॥६४॥ श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः॥
जीवःसर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयं ॥६५॥
हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोऽपहृत् ॥

वे० सर्वव्यापी सर्वधारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥ ६६ ॥ स्तो०
॥१३॥ दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं शीतादिहृन्नित्यसुखं
निरंजनं॥ यः स्वात्मतीर्थं भजतेविनिष्क्रियः स सर्व
वित्सर्वगतोऽमृतोभवेत् ॥ ६७ ॥ इतिश्रीमत्परम
हंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यकृतआत्मबो
धःसमाप्तः ॥ ॥ शुभं भवतु ॥
श्रीगणेशायनमः॥वेदो नित्यमधीयतां तदुदितंकर्म
स्वनुष्ठीयतां ते ने शस्यविधीता मपचितिःकाम्येम
तिस्त्यज्यतां ॥ पापौघःपरिधूयतां भवसुखे दोषोनु ॥१३॥
संधीयता मात्मेच्छाव्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णंविनि

र्गम्यताम्॥१॥संगः सत्सुविधीयतां भगवतो भक्ति
र्दृढाधीयतां शांत्यादिःपरिचियतांदृढतरं कर्माशुसं
त्यज्यतां॥ सद्विद्यानुपसर्प्पतांप्रतिदिनं तत्पादुकेसे
व्यतां ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरो वाक्यंसमाक
र्ण्यतां॥२॥ वाक्यार्थश्चविचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षःस
माश्रीयतांदुस्तर्कात्सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोनुसं
धीयतां॥ब्रह्मै वास्मि विभाव्यता महरहो गर्वः परि
त्यज्यतां देहेहं मतिरुज्झतां बुधजनैर्वादःपरित्यज्य
ताम्॥३॥क्षुद्व्याधिश्चचिकित्स्यतां प्रतिदिनंभिक्षौ
षधंभुज्यतांस्वाद्वन्नं नतु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन
संतुष्यतां॥शीतोष्णादिविषह्यतां नतुवृथा वाक्यंस-

 मुच्चार्यतां मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपा नैष्ठुर्यमु
 त्सृज्यताम्॥४॥ एकांते सुखमास्यतां परतरे चेतःस-
माधीयतां पूर्णात्मासुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितंदृ-
श्यतां प्राक्कर्मप्रविलाप्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरैःश्लि-
ष्यतां प्रारब्धं त्विहभुज्यता मथपरंब्रम्हात्मनास्थी
यतां॥५॥ यःश्लोकपंचकमिदं पठते मनुष्यः संचिंत
यत्यनु दिनं स्थिरता मुपेत्य॥तस्याशुसंसृतिदवानल-
तीव्र घोर तापःप्रशांति मुपयाति चितिप्रसादात्॥६॥
इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितंसाधनपंचकंसंपूर्णम्
श्रीगणेशायनमः ॥श्रीभगवानुवाच॥ज्ञानं परमगुह्यं

मे यद्विज्ञानसमन्वितम्॥सरहस्यंतदंगं च गृहाणगदि
तं मया॥१॥यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः॥
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥२॥अहमेवा
समेवाऽग्रे नान्यद्यत्सदसत्परं॥पश्चादहं यदेतच्चयोवऽ
शिष्येतसोऽस्म्यहम्॥३॥ऋतेऽर्थंयत्प्रतीयेत न प्रती
येतचात्मनि॥ तद्विद्या दात्मनो मायांयथा भासो य-
थातमः॥४॥यथा महांति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु॥
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहं॥५॥एताव
देव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽत्मनः॥अन्वयव्यतिरे
काभ्यां यत्स्यात्सर्वत्रसर्वदा॥६॥ एतन्मतं समाति

ष्ट परमेण समाधिना॥भवान्कल्पविकल्पेषु न विमु
ह्यतिकर्हिचित् ॥७॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽ
ष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांवैय्यासिक्यांद्वितीयस्कंधे
भगवद्ब्रह्मसंवादे चतुःश्लोकीभागवतंसमाप्तम् ॥
गुरुर्नसस्यात्स्वजनोनसस्या त्पितानसस्याज्जननी
नसास्यात् ॥ दैवंनतत्स्यान्नपतिश्चससस्यान्नमोच
येद्यः समुपेतमृत्युं ॥ १ ॥ नीरक्षीरनयेनतथ्यवितथे
संपिंडितेपंडितै र्दुर्बोधेसकलैर्विवेचयतियः श्रीशंक
राख्योमुनिः ॥ हंसोयंपरमोस्तुयेपुनरिहाशक्तास्स
मस्ताः स्थिता जृंभान्निंबफलाशनैकरसिकान्काका

नमून्मन्महे ॥१॥ कपिलपतंजलिगौतमकणभूक्
प्रमुखाःक्षमांमयिकुरुध्वं ॥ स्वधनंभवत्सुमोहाच्छ
तिगंविस्मृत्यशोधितंमुधा ॥ १ ॥ समाप्तम् ॥

इदं पुस्तकं पण्डित ज्येष्ठरामात्मज रविशंकरेण
गुजराती मुद्रणालये मुद्रितम् ॥

शके १८२३ संवत् १९५७

पण्डित नारायणमूलजी
कालबादेविरोड ...जी एतेषां पुस्तकालये लभ्येत.

स्तो०

॥इति वेदांतस्तोत्रसंग्रह समाप्तः॥